JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मुस्लिम पर्सनल लॉ से समान नागरिक संहिता तकः समावेशित सामाजिक विकास की पहल

डॉ० मन्जु
एसोसिएट प्रोफेसर
दिल्ली विश्वविद्यालय

Abstract (सारांश) : बहुल संस्कृति से धनी भारत में सिविल व्यवस्थाऐं व्यक्तिगत विधि (पर्सनल लॉ) के अन्तर्गत की जाती है। फौजदारी मामलों में तो एक समान संहिता लागू हो चुकी है। शरियत पर आधारित तीन तलाक बहुविवाह व हलाला प्रथा आज भी मुस्लिम महिलाओं को नारकीय जीवन बिताने को मजबूर करती है। तीन तलाक पर बने कानून से यो तो तलाक के मामलों में 80 प्रतिशत गिरावट को दर्ज किया है जो कि एक प्रशंसनीय कार्य है। लेकिन समान नागरिक संहिता का विरोध विकास मार्ग को अवरुद्ध करता दिखाई पड़ता है। जबकि भविष्य में यह एक समावेशित विकास की पहल ही सिद्ध होगा।

Keyboard (संकेत शब्द) – विविधता, व्यक्तिगत विधि, शरियत विधि, तीन तलाक, संवैधानिक सुधार, महिला सशक्तीकरण, राष्ट्र निर्माण।

धार्मिक विविधता भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण भाग रहा है। यहाँ प्रत्येक धार्मिक समुदाय अपनी पृथक–पृथक व्यक्तिगत विधियों से प्रशासित होता है। (हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी व यहूदी अपनी–अपनी विधियों से दिशा–निर्देश) प्राप्त करते है। समय–समय पर हुए विदेशी आगमन ने जहाँ भारत को बहुल संस्कृति की भूमि बना दिया, वही एकरूपता के अभाव ने स्थिति को संघर्षमय भी बना दिया है। जिसका परिणाम यूनिफॉर्म सिविल कोड लागू न हो पाने के रूप में देख पाते हैं। इस मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध (विरोध) अकसर मुस्लिम समाज की तरफ से सुनने में आता है, अन्यथा अन्य समाजों में कानूनों का संहिताकरण लगभग हो गया है। लेकिन मुस्लिम समाज में बहुविवाह, निकाहा हलाला व तीन तलाक (तीन तलाक, जो कानूनी रूप से अवैध घोषित किया जा चुकी है) जैसे समस्यायें आज भी प्रथाओं के रूप में प्रचलित है।

समकालीन समय में व्यक्तिगत एवं पारिवारिक मामलों में हिन्दुओं पर हिंदू विधि, ईसाईयों ईसाई विधि, पारसियों पर पारसी विधि, यहूदियों पर यहूदी विधि तथा मुसलमानों पर मुस्लिम विधि ही लागू होती है। स्वतंत्रता पश्चात् 1955–56 में हिंदू विधि के कुछ अंगों का संहिताकरण किया गया, जिसके अन्तर्गत हिंदू, सिक्ख, जैन बौद्ध धर्मावलम्बी आते है। कहा जाता है कि आधुनिक हिंदू विधि की परिभाषा धर्म के संदर्भ से अब दूर हो गई। परंतु मुस्लिम विधि में मुस्लिम शब्द की परिभाषा सदैव से ही धर्म के संदर्भ में ही दी जाती है। जब भी मुस्लिम समाज के अन्तर्गत व्यक्तिगत मामलों में परिवर्तन या संशोधन की बात की जाती है, तो अकसर धर्म का हवाला देकर उन विचारों को दबा दिया जाता है। वही दूसरी तरफ धर्म की वकालत करने वालों के अनुसार धर्म ने स्वयं ही इतने अधिकार महिलाओं को दे रखे है कि उन्हें किसी अन्य संवैधानिक अधिकार की आवश्यकता नहीं है।

मुस्लिम व्यक्तिगत विधि का इतिहास – मुस्लिम विधि 1400 वर्षों के निरंतर विकास का परिणाम है। इसमें दो प्रमुख सम्प्रदाय सुन्नी व शिया है। सुन्नी जो अपेक्षाकृत कठोर नियमों की बात करता है, कि हनफी सम्प्रदाय की व्याख्या होती है, जिसे मुगल बादशाह औरंगजेब ने भी स्वीकृत किया था, जबकि शिया इमामी सम्प्रदाय प्रमुख एक विनम्र व्याख्या मुस्लिम विधि की प्रस्तुत करती है। कुरान, अहादिस, इज़्मा, कियास, रीति–रिवाज, न्यायिक विनिश्चय, विधायन, न्याय साम्यव सद्विवेक को मुस्लिम विधि के स्त्रोत माना जाता है।

एक समय में पूरे देश में क्रिमिनल लॉ शरीयत पर आधारित था। शरियत विधि जिसमें कार्य कुरान के आधार पर किया जाता है। प्राचीन काल से ही यह धारणा थीं कि धर्म व कानून एक–दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े है। चूंकि धर्म की उत्पत्ति दैविय मानी जाती है, अतः कानून भी दैवीय है। इस प्रकार मुस्लिम कानून की उत्पत्ति का प्रथम स्त्रोत दैवीय उपदेश है।

ब्रिटिश काल में पहली बार 1937 मुस्लिम शरियत एप्लीकेंशन ऐक्ट लगाया गया था, जिसमें कहा गया था कि सारे फैमिली मुद्दों पर शरियत का कानून लागू होगा। इस कानून का गुजरात के मुसलमानों ने विरोध किया था। इसमें न्यायलय व न्यायिक प्रक्रिया का कोई वर्णन नहीं किया गया था। दूसरे शब्दों में कहें तो इन मामलों में काजी व मुफ्ती ही देखेंगे। इस अधिनियम के भाग 5 के अनुसार कोर्ट को यह शक्ति दी गई थी कि वह दहेज की रकम को घटा सकता था (विवाह के कान्ट्रेक्ट के दौरान) इस अधिनियम से पूर्ण 1827 से 1887 तक ऐसे कई कानूनों का निर्माण किया गया, जो पसर्नल लॉ के ऊपर परंपरागत कानूनों को महत्व देते प्रतीत होते थे। इसी तरह कुची मेमन एक्ट 1920, मपिला एक्ट 1928 भी था, जिसमें उत्तराधिकार संबंधी प्रावधानों को लागू

किया गया था। कुछ परंपरागत कानूनों को लागू करने के विरोध में 1937 में मुस्लिम शरियत एप्लीकेशन ऐक्ट को लाया गया। अगला पड़ाव इस दिशा में मुस्लिम विवाह–विच्छेद अधिनियम 1939 था, जिसे पूर्व अधिनियम से अधिक प्रगतिशील माना जा रहा था, क्योंकि इसमें महिलाओं को भी तलाक मांगने का संवैधानिक अधिकार का आधार प्रस्तुत किया गया था, जबकि 1937 के अधिनियम का संबंध शादी, तलाक, गार्जियनशिप, दहेज, गुजाराभत्ता, संरक्षता, उपहार ट्रस्ट व वक्फ के मामलों से था।

1939 का मुस्लिम विवाह–विच्छेद अधिनियम एक महत्वपूर्ण अधिनियम था, जिसकी पृष्ठभूमि 1351 में मौलाना असरफ अली थानवी की किताब अल–हिलाल अल अजीरा को माना जाता है। जिसमें कुछ ऐसे मामलों का वर्णन किया गया था, जहाँ विवाहित मुस्लिम महिलाओं ने शादी खत्म करने के लिए धर्म को त्याग दिया था। चूँकि परंपरागत हनफी लॉ में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था, जहाँ महिलाओं को अपने विवाह–विच्छेद के लिए कोर्ट से डिक्री प्राप्त करने का अधिकार हो। तत्पश्चात् उलेमाओं ने फतवा जारी किया कि यदि कोई विवाहित मुस्लिम महिला का पति उसे कष्टदायक परिस्थिति में रखता हो तो उसे कोर्ट से विवाह–विच्छेद प्राप्ति का अधिकार होना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप मुस्लिम विवाह–विच्छेद अधिनियम 1939 अस्तित्व में आया, वैसे तो उलेमा इस अधिनियम से संतुष्ट नहीं थे, क्योंकि इस बिल में इस प्रावधान का आश्वासन नहीं दिया था कि विवाह–विच्छेद की प्रक्रिया को मुस्लिम जज द्वारा ही पूरा करवाया जाएगा। साथ ही इसमें यह भी नहीं कहा गया कि किसी मुस्लिम महिला के धर्म त्याग करने पर उसका विवाह खत्म होगा।

इसी तरह मुसलमान वक्फ वेलिडेटिंग एक्ट 1913, एक ऐसा महत्वपूर्ण कानून था, जो ब्रिटिश भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ के अन्तर्गत बनाया गया था। विभिन्न क्षेत्रों में भी भिन्न–भिन्न एक्ट ब्रिटिश काल में लागू किये गए थे जैसे–

– बंगाल मुस्लिम विवाह व तलाक पंजीकरण अधिनियम 1876

– असम मुस्लिम मैरिज एंड डायर्वोस रजिस्ट्रेशन एक्ट 1935

– बंगाल प्रोटेक्शन आफ मुस्लिम पिलग्रिम्स एक्ट 1896

– हज कमैटी एक्ट 1932

– मुसलमान वक्फ एक्ट 1923, बंगाल वक्फ एक्ट 1934, यू.पी. मुस्लिम वक्फ एक्ट 1936 कुछ ऐसे अधिनियम थे जिनमें मुस्लिम कानून में परिवर्तन किये बिना वक्फ संपत्ति के प्रशासन की बात कही गई।

ब्रिटिश भारत की तरह स्वतंत्र भारत में भी मुस्लिम पर्सनल लॉ के अन्तर्गत संस्थाओं के प्रक्रियात्मक संबंधी वक्फ से था। ज्यादातर कानूनों व अधिनियमों की प्रकृति प्रक्रियात्मक थी, जो मुस्लिम विधि के वास्तविक प्रावधानों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डाल रहे थे। केंद्रिय विधानमंडल व राज्य विधानमंडलों ने समय–समय पर जो कानून बनाये वो इस प्रकार थेः–

– द वक्फ एक्ट 1954

– द दरगाह खवाजा साहिब एक्अ 1955

– द हज कमेटी एक्ट, 1959

– द दरगाह खवाजा साहिब (अमेडमेंट) एक्ट 1964

– द पब्लिक वक्फ (एक्टेंशन ऑफ लिमिटेशन) अमेंडमेंट एक्ट 1959

– द यू.पी. मुस्लिम वक्फ एक्ट 1960

– द यू.पी. मुस्लिम वक्फ एक्ट 1960

– द मद्रास ऑफ वक्फ (सप्लिमेंटरी) एक्ट 1961

– द वक्फ (अमेंडमेंट) एक्ट 1964, 1969, 1984

– द यू.पी. मुस्लिम वक्फ (अमेंडमेंट) एक्ट 1963

– द वक्फ (महाराष्ट्र अमेंडमेंट) एक्ट 1965

– द मद्रास वक्फ (स्पलीमेंटरी) 1961

– द वक्फ एक्ट 1995

– द वक्फ (अमेंडमेंट) एक्ट 20113, 2015

मोटे तौर पर देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्र भारत में सरकार की मुस्लिम पर्सनल लॉ के प्रति नीति अहस्तक्षेप की रही हैं जितनी भी कानूनी गतिविधियां हुई है, वह भी सिर्फ मुस्लिम विधि को और अधिक मजबूती प्रदान करती हुई प्रतीत होती है। मुस्लिम समाज का मानना है कि उनकी व्यक्तिगत विधि बहुत ही पवित्र है, चूंकि उनका संबंध धर्म से है, अतः यह अपरिवर्तनशील माने जाते रहे हैं। जब कभी भी किसी दूषित व्यवस्था में सुधार करने की कोशिश की गई तब तब इसका विरोध मुस्लिम समाज से किया गया। 1985 का शाहबानो बनाम् मोहम्मद अहमद खाँ केस इसकी जीती–जागती मिसाल है जो कि इस प्रकार था–

मोहम्मद अहमद खाँ तथा शाह बानो का निकाह 1932 में हुआ। जिनमें दो पुत्र व तीन पुत्रियों का जन्म हुआ। लगभग 43 वर्षों बाद मोहम्मद खाँ ने शाह बानो को 1975 में अपने घर से निकाल दिया। इस दौरान मोहम्मद खाँ दूसरा विवाह भी कर चुका था। (शरियत के अनुसार एक मुस्लिम चार विवाह कर सकता है)। अलग रहते हुए शाह–बानो ने जीवन–निर्वाह हेतू इंदौर न्यायिक मजिस्ट्रेट से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अन्तर्गत 500 रुपये प्रतिमाह भरण–पोषण देने के लिये आदेश पारित करने की प्रार्थना की।

भरण–पोषण के दावे से इंकार करते हुए मोहम्मद खाँ का कहना था कि चूँकि तलाक हो जाने के बाद शाह बानो उसकी पत्नी नहीं है तथा मुस्लिम विधि द्वारा इद्दद काल (तलाक के बाद तीन महीने, पति की मृत्यु के बाद चार महीने को इद्दत की अवधि कहा जाता है) में वह 200 रुपये प्रतिमाह की दर से लगभग दो वर्षो तक दे चुका है, तथा मेहर (निकाह के समय तय राशि को मेहर कहा जाता है जो कि पति–पत्नी को देता है) के 300 रुपये भी अदा कर चुका है अतः बेगम को गुजारा भत्ता पाने का अधिकार नहीं है। फिर भी न्यायिक मजिस्ट्रेट ने शौहर मोहम्मद खाँ को 25 रुपये हर महीने शाह बानो को देने का आदेश पारित किया। इस तुच्छ धनराशि के विरोध में शाह बानो ने मध्य प्रदेश के उच्च न्यायालय के समक्ष पुनर्निरिक्षण प्रार्थना–पत्र प्रस्तुत किया। जिस पर उच्च न्यायालय ने राशि बढ़ाकर 179 रुपये 20 पैसे कर दी। इस आदेश के विरुद्ध मोहम्मद खाँ ने उच्चतम न्यायालय में अपील दायर कर दी। उच्चतम न्यायालय ने मोहम्मद खाँ की अपील खारिज कर दी तथा मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की।

शाह बानो के निर्णय से पूर्व अधिकांश विधिवेत्ताओं का मत था कि इद्दत की अवधि पूरी होने के पश्चात् पत्नी को गुजारा भत्ता या निर्वाहिका पाने का अधिकार नहीं है। एक केस में न्यायाधीश श्री चंद्रचूंड ने तलाक–शुदा पत्नी के गुजारा भत्ते के अधिकार के विषय में विचार कर मत दिया कि दण्डित प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत ही नहीं, अपितु मुस्लिम विधि के अन्तर्गत भी यह सही नहीं

है कि पति का गुजारा भत्ता देने का यह दायित्व विवाह–विच्छेद के उपरांत, मेहन दे देन के बाद खत्म हो जाए। यदि तलाकशुदा पत्नी के पास निर्वाहिका के पर्याप्त साधन है, तो पति को पत्नी के भरण–पोषण की राशि देने की आवश्यकता नहीं है। माननीय न्यायधीश ने कुरान का हवाला देते हुए स्पष्ट किया कि पति का तालकशुदा पत्नी को भरण–पोषण देने का उत्तरदायित्व है।

इस मुद्दे पर काफी बहस हुई जिसमें अखिल भारतीय मुस्लिम व्यक्तिगत विधि बोर्ड की ओर से यह दलील दी गई है कि कुरान की यह हिदायत केवल पवित्र और ईश्वर परायण व्यक्ति के लिए है, आम आदमी के लिए नहीं। इस दलील पर जो स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या अपनी तलाकशुदा बेगम को गुजाराभत्ता देने वाला व्यक्ति ईश्वर परायण नहीं है? इस मामले में आगे नया मोड़ तब आया जब कट्टरपंथियों ने शाह–बानो को दी जाने वाली राशि के पक्ष में हुये निर्णय के खिलाफ यह कहना शुरू किया कि यह निर्णय शरियत के खिलाफ है। तात्कालिक सरकार ने विरोध के आगे अपने–घुटने टेक दिए। एक ऐसा कदम उठाया, जो कि प्रगतिशील समाज व सुधार से मेल नहीं खाता था। एक नया विधेयक मुस्लिम महिला विवाह–विच्छेद अधिकार विधेयक 1986 में पास किया गया। लेकिन जब न्यायालय के समक्ष टीका के लिये विधेयक आया तो न्यायधीशों में आपस में यह मतभेद देखने को मिला कि यह विधेयक तलाकशुदा महिला स्त्री को उसका हक या सामाजिक न्याय देने में मददगार होगा या नहीं? इस विधेयक के प्रमुख प्रावधान निम्न थेः–

(1) तलाक होने पर पत्नी को अपने भूतपूर्व पति से उचित व न्यायसंगत भरण–पोषण पाने का अधिकार है और पति को इसका प्रबंध इद्दत की अवधि के भीतर करना होगा। उसके उत्तरदायित्व की सीमा पर इद्दत की अवधि नहीं है, बल्कि उसका यह उत्तरदायित्व पत्नी के दूसरे विवाह होने की अवधि तक कायम रहता है।

(2) लेकिन यदि पत्नी पति से गुजारा भत्ता पाने में सफल नहीं होती, तो वह अपने नातेदारों से इस राशि माँग सकती है। वहाँ से भी असफल होने पर यह वक्फ बोर्ड से भरण–पोषण की राशि की माँग कर सकती है।

(3) विधेयक की धारा 3 के अनुसार गुजारा भत्ते का आवेदन पत्र मजिस्ट्रेट को दिया जा सकता है, परंतु पक्षकार यदि चाहे तो परस्पर स्वीकृति से आवेदन पत्र दांडिक प्रक्रिया अधिनियम की धारा 125 के अन्तर्गत भी प्रेषित कर सकती है।

(4) अधिनियम के लागू होने के पूर्व दांडिक अधिनियम की धारा 125 के अन्तर्गत दिये गये निर्णय मान्य होंगे और लागू किये जा सकेंगे।

(5) दांडिक प्रक्रिया अधिनियम की धारा 125 के अन्तर्गत विलम्बित याचिकाओं का निर्णय 1986 के अधिनियम के लागू होने के पश्चात् अधिनियम के अन्तर्गत ही करना होगा (दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अनुसार तलाकशुदा महिलायें अपने पति से भरण–पोषण का दावा करने की हकदार होगी, जब तक वह पुनर्विवाह नहीं करती।)

(6) इस अधिनियम और उसके अन्तर्गत पारित किये गये नियमों के अन्तर्गत याचिकाओं को शीघ्र निपटाने का प्रावधान है तथा कार्यवाही दिन–प्रतिदिन करने की हिदायत है।

(7) लेकिन यदि महिला पुनः विवाह कर लेती है तो गुजारे भत्ते का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। इस प्रकार इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि तलाकशुदा मुस्लिम महिला भरण–पोषण प्राप्त कर सके।

गुजारे भत्ते का निर्धारण इद्दत के दौरान किए जाने को लेकर विभिन्न न्यायालयों ने भिन्न–भिन्न निर्णय दिये है। जैसे गुजरात उच्च न्यायालय के सामने ए.ए. अब्दुल्ला बनाम ए.वी. मोहमला का मामला आया। जिसमें न्यायधीश शाह ने कहा कि शौहर को अपनी बेगम के गुजारे की रकम का फैसला इद्दत की अवधि के भीतर कर देना चाहिए। परंतु आंध्र प्रदेश की एक न्यायिक पीठ ने इसके विपरित मत व्यक्त किया। जिसमें तीन में दो न्यायाधीशों जिसमें न्यायधीश सरदार अली खां ने कई मुस्लिम विधि की पुस्तकों का हलावा देते हुए कहा कि मुस्लिम पति पर अपनी पत्नी के गुजारे का उत्तरदायित्व इद्दत की अवधि तक ही सीमित है तथा कुरान पर टीका करना न्यायालय की सीमा से बाहर है। उनका कहना था कि धर्म सबसे ऊपर है तथा पति पर तलाकशुदा पत्नी के गुजारे का उत्तरदायित्व है, यह विधेयक की गलत व्याख्या है।

1986 का मुस्लिम महिला विवाह–विच्छेद अधिनियम तथा दंड प्रक्रिया संहिता (धारा 125–128) कभी–कभी संवैधानिक सुधार तथा परंपरगात रीतियों में संघर्ष हो जाता है, जैसे अधिनियम 1986 के लागू होने के पश्चात् तलाकशुदा मुस्लिम महिला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125–128 का सहारा नहीं ले सकती, यही नहीं धारा 125 के अन्तर्गत विलम्बित मामले भी 1986 अधिनियम के तहत ही तय होंगे। परंतु यदि पति पत्नी चाहे तो आपसी सहमति से धारा 125 के अन्तर्गत याचिका दे सकते हैं यह देखा गया कि अधिनियम 1986 तथा धारा 125 में संघर्ष है।

धारा 125 में वर्णन किया गया है कि यदि कोई साधनवान व्यक्ति, अपना गुजारा करने में असमर्थ पत्नी को या अपने जायज या नजायज नाबालिग (विवाहित या अविवाहित) जो अपना गुजारा पाने में असमर्थ है, या जायज या नाजायज बालिक को (विवाहित पुत्री को छोड़कर) नाबालिक विवाहित पुत्री के लिए भी, पति के असमर्थ होने की स्थिति में पिता (वालिद) द्वारा गुजारा भत्ता देने का आदेश उसके बालिक होने तक दिया जा सकता है। जो शारीरिक या मानसिक विकास न हो पाने या किसी चोट के कारण अपना गुजारा करने में असमर्थ है। यह सिद्ध होने पर कि उसने गुजारा भत्ता देने से इंकार किया है, या उपेक्षा की है तो वह गुजारा भत्ता की राशि का देनदार होगा। यह राशि हर महीने देनी होगी। इय राशि मजिस्ट्रेट द्वारा निर्धारित की जाएगी। इस प्रकार दोनों में विरोधाभास प्रतीत होता है क्योंकि जहाँ दंड प्रक्रिया संहिता 125 समाज की सभी तलाकशुदा महिलाओं को भरण–पोषण के लिये संरक्षण देने की बात करती है, वही अधिनियम 1986 केवल मुस्लिम महिलाओं को संरक्षण देने की बात करती है। अबूबक्र बनाम रहियानथ (2008) 3 के.एल.टी. 482 के मामले में यह निर्णय किया गया कि मुस्लिम महिला अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत दिये गए तालकशुदा महिलाओं के अधिकार भारतीय दंड संहिता की धारा 125 में दिये गए अधिकारों से अधिक व्यापक है (क्योंकि धारा 125 में निर्वाह राशि 500 रुपये से ज्यादा निर्धारित नहीं की जा सकती।)

लेकिन मुस्लिम विधि के अनुसार पति निम्न आधारों पर अपनी पत्नी को गुजारा भत्ता देने से इंकार कर सकता है–

(क) यदि उनका निकाह सही (विधिमान्य) न हो,

(ख) यदि बीबी मुस्लिम विधि के अन्तर्गत नाबालिग हो,

(ग) यदि बीबी अनैतिक जीवन बिता रही हो,

(घ) यदि बीबी शौहर के प्रति आज्ञाकारिणी न हो

(ड़) यदि बीबी बिना किसी उचित कारण के शौहर से पृथक रह रही हो।

मुस्लिम विधि के अन्तर्गत खेदपूर्ण पक्ष यह है कि पति (शौहर) पत्नी के गुजारा भत्ते के किसी भी दावे को किसी भी समय तलाक देकर समाप्त कर सकता था, यह बात पुरानी दंड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत पास किये आदेशों पर भी लागू होती थी। लेकिन नई संहिता की धारा 125 में "पत्नी" के अन्तर्गत वह पत्नी भी शामिल है जिससे तलाक हो गया है, तथा जिसने दूसरा

विवाह नहीं किया है। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने कई प्रमुख निर्णय दिये। जैसे, बाई ताहिरा बनाम् अली हुसेन में न्यायधीश कृष्ण अय्यर ने मत व्यक्त किया कि धारा 125 के अन्तर्गत वह प्रत्येक स्त्री जिसका विवाह–विच्छेद हो चुका हो, भरण–पोषण की अधिकारिणी है। न्यायधीश महोदय का आगे कहना था कि व्यक्तिगत विधि के अन्तर्गत विवाह–विच्छेद के बाद मेहर या अन्य किसी भी राशि की अदयगी द्वारा पति का यह उत्तरदायित्व समाप्त नहीं होता जब तक कि मेहर या निर्वाहिका की राशि इतनी न हो कि स्त्री अपना बाकी जीवन सुचारू रूप से यापन कर सके। व्यक्तिगत विधि का कोई भी नियम स्त्री को धारा 125 के अन्तर्गत दिये गए भरण–पोषण प्रबंधन के अधिकार को समाप्त नहीं कर सकता। धरा 127 (3)(ख) विवाह–विच्छेद के पश्चात् भी पत्नी को गरीबी से बचाया जाए और यदि मेहर की रकम से ऐसा नहीं हा पाता है तो पति की यह दलील की उसकी व्यक्तिगत विधि के अन्तर्गत उसका दायित्व समाप्त हो चुका है, बड़ा ही निरर्थक व बेमानी है तथ पति अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता। फिजुलन वी बनाम् कादिर में सर्वोच्च न्यायलय ने ऐसा ही फैसला दिया। मेहर की राशि का अन्य राशि पर्याप्त है तथा महिला (पत्नी) सुचारू रूप से अपना जीवन–यापन कर सकती है, तो धारा 125–127 के अन्तर्गत न्यायालय का गुजारे भत्ते के दायित्व से कोई संबंध नहीं है। मेहर का एक भाग तो पति को विवाह के तुरन्त बाद देना होता है,और यदि कोई अनुबन्ध हुआ हो, तो मेहर की समस्त रकम विवाह के पश्चात् देय हो सकती है। मुस्लिम विधि के अन्तर्गत मेहर विवाह का आवश्यक अंग है, जो कि गुजारे भत्ते का प्रतिस्थापक नहीं है।

यह अधिनियम तुष्टीकरण प्रतीक के रूप में समझा जाता है, जहाँ एक प्रगतिशील कदम को सिर्फ वोट बैंक के लालच स्वरूप रोक दिया गया। लेकिन सायना बानो की स्थिति 1985 की शाह बानो जैसी नहीं रही बल्कि तीन तलाक की मार सहने के बावजूद उन्हें न्यायिक संरक्षण व न्याय दोनों मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम 2019 के रूप में प्राप्त हुआ। उत्तराखंड की शायरा बानो, जिसे उसके पति और उसके परिवार के द्वारा दहेज की मांग पूरा नहीं करने के लिए मानसिक व शारीरिक प्रताड़ना का सामना करना पड़ा, को उसके पति के द्वारा पत्र के माध्यम से तत्काल ट्रिपल (तीन) तालक दे दिया गया, तथा पति ने उसे अपने दो बच्चों की कस्टडी से भी इंकार किया। सायरा बानो ने इस प्रथा को महिलाओं की गरिमा से खिलवाड़ तथा भेदभावपूर्ण बताया।

सुप्रीम कोर्ट ने 22 अगस्त 2017 को बहुमत के फैसले द्वारा तीन तलाक को अनुच्छेद 14 के विपरीत बताया। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की तारीख से, (22 अगस्त 2017 से संसद में बिल

पेश करने तक यानि 28 दिसंबर 2017 तक देश में तीन तलाक के लगभग और 100 मामले सामने आए।)

सर्वोच्चय न्यायालय के फैसले को तत्काल प्रभाव से लागू करने के लिए 2018 में मुस्लिम महिला विवाह अधिकार संरक्षण पर अध्यादेश तथा 2019 में इसे कानूनी जामा पहना दिया गया। जिसमें तीन तलाक को शून्य व अवैध घोषित किया गया। इसमें पति को 3 साल तक की कैद व जुर्माने का प्रावधान रखा गया। इस अधिनियम से यह अपेक्षा की जाती है कि इससे मुस्लिम महिलाओं की वैवाहिक स्थिति में सुधार होगा तथा घरेलू हिंसा और समाज में हो रहे भेदभाव से बाहर निकलने में मदद करेगा। इसके साथ–साथ तीन तलाक के उन्मूलन से महिला सशक्तीकरण में योगदान प्राप्त होगा तथा वे एक गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत कर पाएगी। इस अधिनियम ने मुस्लिम महिलाओं के संवैधानिक, मौलिक और लोकतांत्रिक अधिकारो की रक्षा भी की है। इस अधिनियम का सकारात्मक परिणाम एक वर्ष में तीन तलाक के मामलों में 80 प्रतिशत की गिरावट के रूप में देख सकते है।

मुस्लिम व्यक्तिगत कानूनों में सुधार हो रहा है लेकिन बहुविवाह व हलाला जैसी कुप्रथाओं को भी बदलने की आवश्यकता है ताकि व्यक्तिगत कानूनों में सुधारों को मौजूदा समाज में सकारात्मक अर्थों में लागू किया जा सके। महिलाओं के विकास, स्वालंबन एवं सबलीकरण के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें शिक्षित कर जागृत किया जाए ताकि वे घर की चार–दीवारी में कूपमडूंक न रह कर, शिक्षित–प्रशिक्षित होकर स्वयं जीविकोपार्जन कर सके, महिलाओं को केवल मात्र शारीरिक मनोरंजन, शिशु–जन्म एवं शिशु पालन का यन्त्र न समझा जाए, वही दूसरी ओर परिवार में जन्म पुत्र व पुत्री को हर तरह से बराबर का स्थान दिया जाए। दोनों को शिक्षा के समान अवसर मिले, समान रूप से दोनों को संपत्ति में हिस्सेदारी प्राप्त हो। ताकि शाह बानो, सरला मुद्गल, मीना माथुर, लिलि थॉमस जैसे मुकद्दमों की भाँति पुरुषों को कानूनी प्रक्रिया की पेचीदगियों का फायदा उठाने से रोका जा सके और दूसरा विवाह करने के लिए उनके पास धर्मपरिवर्तन का रास्ता न खुला हो, इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्तिगत कानूनों में सुधार की प्रक्रिया को समूचे देश पर सामान्य रूप से लागू किया जाए बल्कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समय–समय पर दिए गए निर्देशों एवं राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों में निर्दिष्ट समान नागरिक संहिता को शीघ्र लागू किया जाए। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मुस्लिम पर्सनल लॉ में सुधार की राह समान नागरिक संहिता से ही होकर गुजर सकती है।

संदर्भ

1. महमूद, ताहिर एंड सैफ मोहम्मद., (2017) इन्ट्रोडक्शन टू मुस्लिम लॉ, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, लेक्सिस नेक्सिस, न्यू दिल्ली, संस्करण 2, आईएसबीएन 978–8131253809

2. मौदुदी, सईद., (1951) तहफीम–अल–कुरान, लाहौर, इस्लामिक पब्लिकेशन लिमिटेड

3. "द डिस्सोल्यूशन ऑफ मुस्लिम मैरज एक्ट 1939, इंडियन कानून, आमेनाइजेशन, रिट्राइवड 1 दिसंबर 2017, http:/Indiacode.nic.in

4. दास अरमन., (2010) द रोल ऑफ कस्टम इन इस्लामिक पर्सनल लॉ उडीसा (कटक), नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी

5. खालिद, राशिद सईद., (2018) मुस्लिम लॉ, ई.बी.बी. पब्लिशिंग संस्करण 5, दिल्ली, आईएसबीएन 978–9387487956

6. हमीदुल्लाह मुहम्मद., (1992) इंट्रोडक्शन टू इस्लाम, किताब भवन आईएसबीएन 978–8171511459, सूरह अन–निसा

7. सिंह एम पी., (2017) आऊटलाइन ऑफ इंडियन लीगल एण्ड कान्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री, संस्करण 8, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, दिल्ली आईएसबीएन 978–934578633